पटना उच्च न्यायालय की अधिकारिता में

आपराधिक विविध वाद संख्या 38635/2019

थाना कांड संख्या-176 वर्ष-2016 थाना-एयरपोर्ट जिला-पटना

==========

नीलेश कुमार सिंह उर्फ नीलेश कुमार पिता कृष्ण मुरारी सिंह निवास प्रश्य सदन, राइडिंग रोड, थाना-हवाई अड्डा, जिला-पटना

.... याचिकाकर्ता

बनाम्

1. बिहार राज्य
2. पंकज कुमार सिंह पिता श्री राज किशोर सिंह निवास संजय गांधी नगर, रोड नं.-6, हनुमान नगर, थाना-पत्राकर नगर, जिला-पटना

..... विपरीत पक्ष/ओं

==========

उपस्थितिः

याचिकाकर्ता के लिए	:	श्री नरेश दीक्षित, अधिवक्ता
		श्री बिनोद कुमार मिश्रा,अधिवक्ता
		श्री संजय पांडे,अधिवक्ता
राज्य के लिए	:	श्री निर्मल कुमार सिन्हा, अपर लोक अभियोजक
सूचना देने वाले के लिए	:	श्री शुबेश पांडे, अधिवक्ता
		श्री अमित कुमार मिश्रा, अधिवक्ता

==========

धारा 482 सीआरपीसी--- रद्दीकरण ---दायरा ---भारतीय दंड संहिता---धारा 304 (बी)--भारतीय साक्ष्य अधिनियम---धारा 113 (बी)----आक्षेपित आदेश को रद्द करने की याचिका जिसके तहत पति/याचिकाकर्ता द्वारा दायर उन्मोचन याचिका को खारिज कर दिया गया और धारा 304 (बी) आईपीसी के तहत आरोप तय किया गया---याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप यह है कि शादी के दो महीने बाद याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों ने दहेज की मांग पूरी न होने के कारण मृतका को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया और इस तरह की यातनाएं जारी रहीं, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई--- याचिकाकर्ता की ओर से तर्क दिया गया कि न तो दहेज की मांग की गई थी, न

ही दहेज के लिए कोई यातना दी गई थी, और न ही उसकी मृत्यु से ठीक पहले कोई यातना दी गई थी और मृतका की उपचार के दौरान स्वाभाविक मृत्यु हुई थी।

*निर्णय: आरोप तय करने के चरण में, न्यायालय को एक लघु परीक्षण करने की आवश्यकता है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने की आवश्यकता है, केवल यह पता लगाने के लिए कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, और यह नहीं देखना है कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए मामला बनाया है या नहीं-- जांच रिपोर्ट के अनुसार, मुंह और नाक से खून बहने के अलावा छाती पर चोट थी और कंधे पर खून के धब्बे थे---पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, कठोर और कुंद पदार्थ के कारण तीसरी पसली के लेबल पर उरोस्थि का मृत्युपूर्व फ्रैक्चर है और चोट के कारण रक्तस्राव के कारण मृत्यु का कारण है--- पूरे शरीर पर मृत शरीर के निशान भी पाए गए थे--- याचिकाकर्ता-पति के लिए मेडिकल कंपनी खोलने के रूप में दहेज की मांग की गई थी और इसे पूरा न करने के कारण, शादी के दो महीने बाद से ही पीड़िता/याचिकाकर्ता की पत्नी को प्रताड़ित किया जाने लगा और इस तरह की यातनाएं जारी रहीं, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई---पीड़िता को अस्पताल में भर्ती कराना और उसका उपचार इस तरह से किया गया था कि यह दिखाया जा सके कि अस्पताल में उपचार के दौरान उसकी मृत्यु हो गई--- याचिकाकर्ता के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी के तहत आरोप तय करने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री है---आरोपित आदेश में कोई अवैधता या कमी नहीं है-- याचिका खारिज की जाती है। (पैरा **1, 39, 47-51)***

(1988) 1 एससीसी 692, 1992 सप्लीमेंट (1) एससीसी 335, (2005) 13 एससीसी 540, (1977) 4 एससीसी 39, (1979) 3 एससीसी 4, (1996) 4 एससीसी 659, (2000) 6 एससीसी 338, (2000) 8 एससीसी 547, (2005) 1 एससीसी 568, (2007) 5 एससीसी 403, (2008) 2 एससीसी 561, (2010) 2 एससीसी 398, (2010) 9 एससीसी 368, (2012) 9 एससीसी 460, (2014) 11 एससीसी 709, (2019)7 एससीसी 515, (2019) 16 एससीसी 547, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1222, (2021) 8 एससीसी 583, (2022) 12 एससीसी 657, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 379, (2023) 6 एससीसी 768, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1369, (2011) 11 एससीसी 359, (2015) 3 एससीसी 724, (2017) 1 एससीसी 101

.....पर भरोसा किया गया।

==========

पटना उच्च न्यायालय का निर्णय आदेश

==========

कोरमः माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेंद्र कुमार

मौखिक निर्णय

तारीखः10.04.2024

वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता की ओर से सीआरपीसी की धारा 482 के तहत हवाई अड्डा थाना कांड संख्या 176/2016 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 467/2018 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश-II, पटना द्वारा पारित दिनांक 29.03.2019 को पारित आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए दायर की गई है, जो पति/याचिकाकर्ता नीलेश कुमार सिंह, बहनोई रत्नेश कुमार और रत्नेश कुमार की पत्नी के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ धारा 304(बी) के तहत दंडनीय अपराध के लिए दर्ज किया गया था। आक्षेपित आदेश द्वारा, एलडी ट्रायल कोर्ट ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304(बी) के तहत आरोप तय करने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री पाते हुए, सीआरपीसी की धारा 227 के तहत दायर अभियुक्त/याचिकाकर्ता नीलेश कुमार सिंह की याचिका को खारिज कर दिया है।

2. प्रथम सूचना रिपोर्ट से अभियोजन पक्ष का मामला यह उभर कर सामने आया है कि मृतका रानी देवी पुत्री सूचक श्री पंकज कुमार सिंह की शादी लगभग तीन वर्ष पूर्व याचिकाकर्ता नीलेश कुमार सिंह उर्फ नीलेश कुमार पुत्र कृष्ण मुरारी सिंह के साथ हुई थी। विवाह के लगभग दो माह पश्चात याचिकाकर्ता/पति, उसके भाई रत्नेश कुमार पुत्र स्व. श्याम बिहारी सिंह तथा रत्नेश कुमार की पत्नी ने मृतका को यह कहते हुए प्रताड़ित करना शुरू कर दिया कि वह अपने पिता से याचिकाकर्ता के लिए मेडिकल कंपनी खोलने के लिए कहे, अन्यथा उसे उसके ससुराल में रहने की अनुमति नहीं दी जाएगी। याचिकाकर्ता तथा उसके भाई रत्नेश कुमार ने सूचक को अपने घर बुलाया तथा उसके लिए मेडिकल कंपनी खोलने के लिए कहा। हालांकि सूचक ने यह कहते हुए ऐसी कंपनी खोलने में अपनी असमर्थता व्यक्त की कि उसकी पुत्री की शादी में पहले ही बहुत अधिक धन व्यय हो चुका है। तत्पश्चात सभी अभियुक्तगण मृतका से बातचीत करना बंद कर दिया तथा दहेज के लिए प्रताड़ित करने लगे तथा मेडिकल कम्पनी खोलने के लिए दबाव बनाने लगे। तत्पश्चात सितम्बर 2015 में वादी जो वादी का दामाद है, ने अपने मित्र मनीष के माध्यम से फोन द्वारा उसे अपने घर बुलाया तथा मेडिकल कम्पनी खोलने के लिए पुनः कहा तथा अपना मकान भी मांगा, जिस पर वादी ने उसे बताया कि मकान तीन भाइयों के नाम पर है तथा वह उसे यह मकान देने में असमर्थ है। इस प्रकार की

बात कहने पर सभी अभियुक्तगण नाराज हो गये। दिनांक 31.10.2016 को प्रातः लगभग 4:20 बजे दामाद के भाई रत्नेश कुमार का फोन आया कि उसकी पुत्री बीमार है तथा पारस अस्पताल में भर्ती है। जब वादी ने बीमारी के बारे में जानना चाहा तो बताया गया कि गम्भीर हृदयाघात हुआ है। जब मुखबिर पारस अस्पताल पहुंचा तो उसने पाया कि उसकी बेटी रानी देवी की मौत हो चुकी है। उसने दावा किया है कि उसकी बेटी की मौत अप्राकृतिक है। फर्दबयान सुबह 7:30 बजे पारस एचएमआरआई अस्पताल, पटना में दिया गया।

3. जांच के बाद पुलिस ने 28.01.2017 को आरोप पत्र संख्या 04/2017 के तहत भारतीय दंड संहिता की धारा 304(बी)/34 के तहत दंडनीय अपराध के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया। रिकॉर्ड के अनुसार, 15.12.2017 को आरोप पत्र संख्या 168/2017 के तहत पूरक आरोप पत्र भी दो सह-आरोपियों, स्वर्गीय श्याम बिहारी सिंह के पुत्र रत्नेश कुमार और रत्नेश कुमार की पत्नी के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 304(बी)/302/34 के तहत दंडनीय अपराध के लिए प्रस्तुत किया गया था।

4. सुनवाई के दौरान याचिकाकर्ता ने अपने आरोप मुक्त होने के लिए सीआरपीसी की धारा 227 के तहत ट्रायल कोर्ट में आवेदन किया। हालांकि, निचली अदालत ने 29.03.2019 के अपने आदेश के तहत उक्त आवेदन को खारिज कर दिया, जिसके खिलाफ याचिकाकर्ता ने 29.03.2019 के विवादित आदेश को रद्द करने/रद्द करने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत वर्तमान याचिका दायर की है।

5. याचिकाकर्ता के वकील, सूचनादाता के वकील और राज्य के वकील को सुना गया।

6. याचिकाकर्ता के वकील ने दलील दी कि मृतक रानी देवी एक शिक्षित महिला थी, जिसके पास एम.एस.सी. की डिग्री थी और वह एक मिलनसार महिला थी, हालाँकि वह नौकरी नहीं करती थी। हालाँकि, उसके पति या उसके ससुराल वालों के खिलाफ उसकी ओर से कोई शिकायत नहीं है। उन्होंने यह भी दलील दी कि मृत्यु से ठीक पहले दहेज की माँग या यातना का कोई आरोप नहीं है, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (बी) के आवश्यक तत्वों में से एक है। इसलिए, याचिकाकर्ता के खिलाफ भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (बी) के तहत अपराध नहीं बनता है। उन्होंने आगे कहा कि एफआईआर के अनुसार भी, याचिकाकर्ता के लिए मेडिकल कंपनी खोलने के लिए अंतिम कॉल सितंबर, 2015 के महीने में सूचक द्वारा प्राप्त हुई थी, यानी अक्टूबर 2016 के महीने में मृत्यु से बहुत पहले। उन्होंने आगे कहा कि मृतक को याचिकाकर्ता द्वारा कभी भी प्रताड़ित नहीं किया गया था और सीने में दर्द और उल्टी की शिकायत पर,

उसे पटना में उपलब्ध सबसे अच्छे अस्पताल यानी पारस एचएमआरआई अस्पताल में भर्ती कराया गया था, जहाँ इलाज के दौरान, उसे लगभग 45 मिनट तक कार्डियोपल्मोनरी रिससिटेशन (सीपीआर) दिया गया था, जिसके दौरान छाती की पसलियों के टूटने की पूरी संभावना है। इसलिए, वह बीमारी से पीड़ित होने के कारण स्वाभाविक मृत्यु हो गई।

7. उन्होंने आगे पारस अस्पताल की रिपोर्ट का हवाला दिया जो केस डायरी का हिस्सा है। उन्होंने बताया कि रिपोर्ट के अनुसार मृतक के शरीर पर कोई चोट नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि पारस एचएमआरआई अस्पताल, पटना की मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार मृतक के शरीर पर कोई शारीरिक चोट नहीं है। यहां तक कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट में भी मृतक के शरीर पर किसी बाहरी चोट का जिक्र नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि तीसरी पसली के लेबल पर उरोस्थि का फ्रैक्चर पारस अस्पताल द्वारा उपचार के दौरान दिए गए सीपीआर के कारण हुआ था। उन्होंने सीपीआर पर मेडिकल लेख की एक प्रति भी संलग्न की है जिसमें उल्लेख किया गया है कि डॉ. माइकल सेयर, अमेरिकन हार्ट एसोसिएशन के प्रवक्ता और सिएटल में वाशिंगटन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ने कहा कि सीपीआर करते समय टूटी हुई पसलियाँ अपेक्षित होती हैं और फ्रैक्चर होने की चिंता लोगों को कार्डियक अरेस्ट में किसी की मदद करने से नहीं रोकनी चाहिए। उन्होंने उसी लेख का हवाला देते हुए यह भी कहा कि सीपीआर के दौरान पसलियों के फ्रैक्चर से पीड़ित होने के लिए महिलाएं उच्च जोखिम वाले समूहों में आती हैं।

8. विसरा रिपोर्ट का हवाला देते हुए याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने दलील दी कि विसरा रिपोर्ट भी याचिकाकर्ता या किसी भी आरोपी व्यक्ति की किसी भी तरह की दोषीता का सुझाव नहीं देती है, क्योंकि विसरा रिपोर्ट के अनुसार कांच के जार की सामग्री में कोई धातु, अल्कलॉइडल, ग्लाइकोसाइडल, कीटनाशक और वाष्पशील जहर नहीं पाया जा सका।

9. वकील ने आगे कहा कि अन्य बातों के अलावा एक महत्वपूर्ण तत्व यह है कि महिला को उसकी मृत्यु से ठीक पहले दहेज की मांग के लिए या उससे संबंधित किसी भी तरह की क्रूरता या उत्पीड़न का सामना करना पड़ा होगा। याचिकाकर्ता के खिलाफ पूरे मामले में यह तत्व गायब है। उन्होंने आगे कहा कि आरोप के अनुसार, मृत्यु से ठीक पहले दहेज की मांग और यातना नहीं दी गई, क्योंकि मेडिकल कंपनी खोलने के लिए आखिरी कॉल सितंबर, 2015 में की गई थी, यानी कथित पीड़िता की मृत्यु से बहुत पहले 30.12.2016 को और उसकी मृत्यु से ठीक पहले यातना देने का कोई आरोप नहीं है। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि उसे कोई जहरीला पदार्थ दिया गया या

बाहरी चोट पहुंचाने के लिए कोई शारीरिक हमला किया गया। उन्होंने यह भी कहा कि आरोप तय करने के लिए आवश्यक शर्तें पूरी नहीं की गई हैं।

10. राज्य के लिए विद्वान लोक सूचक अभियोजक तथा मुखबिर के लिए विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि *फर्दबयान* तथा जांच के दौरान पुलिस द्वारा एकत्रित सामग्री से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के लिए मेडिकल कंपनी खोलने की मांग की गई थी तथा मांग पूरी न होने के कारण पीड़ित को लगातार प्रताड़ित किया जा रहा था। उन्होंने जांच रिपोर्ट का हवाला देते हुए यह भी प्रस्तुत किया कि मृतक के शरीर पर चोटें थीं, जैसे मुंह तथा नाक से खून आना, कंधे पर खून के धब्बे, छाती पर चोट के निशान। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता/अभियुक्त द्वारा केस डायरी के पैरा-12 से प्राप्त विवरण के अनुसार मृतक को पेट दर्द की शिकायत थी। हालांकि मेडिकल रिपोर्ट में यह गलत उल्लेख किया गया है कि उल्टी की शिकायत थी। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि पेट दर्द या उल्टी की स्थिति में सी.पी.आर. की कोई आवश्यकता नहीं होती। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, पोस्टमार्टम सुबह 11:00 बजे शुरू हुआ और जांच के समय पूरे शरीर में कठोरता मौजूद थी। उन्होंने आगे कहा कि कठोरता की शुरुआत की औसत अवधि लगभग आठ घंटे है और लगभग अठारह घंटों में पूरे शरीर में कठोरता विकसित होती है। उन्होंने आगे बताया कि पारस अस्पताल की रिपोर्ट के अनुसार, उसे 4:10 बजे अस्पताल में हांफते हुए हालत में लाया गया था और कोई कैरोटिड पल्स महसूस नहीं हो रहा था और उसे 4:55 बजे मृत घोषित कर दिया गया था। लेकिन, उन्होंने प्रस्तुत किया कि पोस्टमार्टम किए जाने के समय सुबह 11:00 बजे कठोरता को देखते हुए, उसे 4:10 बजे पारस अस्पताल लाए जाने से काफी पहले ही मर जाना चाहिए था। उनका दावा है कि, वास्तव में, पीड़िता पहले से ही घर पर मृत थी और पारस में पूरा उपचार यह दिखाने के लिए किया गया था कि वह इलाज के दौरान अस्पताल में मर गई है। उन्होंने बताया कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार मौत किसी कठोर और कुंद पदार्थ से लगी चोट के कारण हुए रक्तस्राव के कारण हुई है।

11. उन्होंने आगे कहा कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के अनुसार धारा 304(बी) आईपीसी की सभी सामग्रियाँ मौजूद हैं। आरोप तय करने के समय, केवल *प्रथम दृष्टया* मामला देखा जाना है; कथित अपराध का उचित संदेह से परे सबूत इस स्तर पर नहीं देखा जाना है। उन्होंने यह भी कहा कि आरोप तय करने के चरण में, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के सत्यापन मूल्य को तौलने की सीमित गुंजाइश है। आरोप तय करने के चरण में एक छोटा मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

12. इससे पहले कि मैं पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर गुण-दोष के आधार पर विचार करूं, सीआरपीसी की धारा 482 के दायरे और दायरे को देखना उचित होगा।

13. धारा 482 सीआरपीसी उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को बचाती है और यह इस प्रकार है:-

> "482. **उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की बचत। -**
> इस संहिता में कुछ भी ऐसा नहीं माना जाएगा जो उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करे, जो इस संहिता के तहत किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक हो सकता है। "

14. माधवराव जीवाजीराव सिंधिया बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे, [(1988) 1 एससीसी 692], सुप्रीम कोर्ट की माननीय तीन जजों की बेंच ने धारा 482 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही को रद्द करने के लिए कानून इस प्रकार निर्धारित किया है:

> "7. कानूनी स्थिति अच्छी तरह से स्थापित है कि जब प्रारंभिक चरण में अभियोजन को रद्द करने के लिए कहा जाता है, तो अदालत द्वारा लागू किया जाने वाला परीक्षण यह है कि क्या लगाए गए निर्विवाद आरोप प्रथम दृष्टया अपराध को स्थापित करते हैं। अदालत को किसी विशेष मामले में दिखाई देने वाली किसी भी विशेष विशेषताओं पर विचार करना भी है ताकि यह विचार किया जा सके कि अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देना समीचीन और न्याय के हित में है या नहीं। ऐसा इस आधार पर है कि न्यायालय का उपयोग किसी अप्रत्यक्ष उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है और जहां न्यायालय की राय में अंतिम दोषसिद्धि की संभावना कम है और इसलिए आपराधिक अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होने की संभावना नहीं है, न्यायालय मामले के विशेष तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कार्यवाही को रद्द भी कर सकता है, भले ही वह प्रारंभिक चरण में हो।

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल [1992 अनुपूरक (1) एससीसी 335] में धारा 482 सीआरपीसी के तहत उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के दायरे और सीमा पर ऐतिहासिक फैसला सुनाया। यह अभी भी लागू है और सर्वोच्च न्यायालय सहित सभी न्यायालयों द्वारा इसका लगातार पालन किया जा रहा है और इस पर भरोसा किया जा रहा है।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भजन लाल मामले (सुप्रा) में निम्न प्रकार निर्णय दिया:-

"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की श्रृंखला में प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में, जिन्हें हमने ऊपर उद्धृत और पुनः प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के तौर पर मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं, जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना संभव नहीं हो सकता है और असंख्य प्रकार के मामलों की एक विस्तृत सूची देना संभव नहीं है, जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाते हैं या आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ दी गई अन्य सामग्री, यदि कोई हो, में लगाए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो संहिता की धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जा सकता है।

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उनके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहां एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध हैं, वहां पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना जांच की अनुमति नहीं है, जैसा कि संहिता की धारा 155(2) के तहत परिकल्पित है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में कार्यवाही शुरू करने और जारी रखने

पर स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान है, जो पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण रूप से भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही अभियुक्त पर बदला लेने के गुप्त उद्देश्य से और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण रूप से शुरू की जाती है।

103. हम इस आशय की चेतावनी भी देते हैं कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत ही संयम और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में; कि न्यायालय को एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के बारे में जांच शुरू करने का कोई औचित्य नहीं होगा और असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां न्यायालय को अपनी मर्जी या मनमर्जी के अनुसार कार्य करने का मनमाना अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं करती हैं।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उड़ीसा राज्य बनाम सरोज कुमार साहू, (2005) 13 एससीसी 540 में धारा 482 सीआरपीसी के दायरे और दायरे को स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:

"8. ..... धारा के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय अपील या पुनरीक्षण न्यायालय के रूप में कार्य नहीं करता है। धारा के तहत निहित अधिकार क्षेत्र, हालांकि व्यापक है, का प्रयोग संयम से, सावधानी से और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए और केवल तभी किया जाना चाहिए जब ऐसा प्रयोग धारा में विशेष रूप से निर्धारित परीक्षणों द्वारा उचित ठहराया गया हो। इसका प्रयोग वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए किया जाना चाहिए जिसके प्रशासन के लिए ही न्यायालय मौजूद हैं। न्यायालय का अधिकार न्याय को आगे बढ़ाने के लिए है और यदि उस अधिकार का दुरुपयोग करने का कोई प्रयास किया जाता है ताकि अन्याय उत्पन्न हो, तो न्यायालय के पास दुरुपयोग को रोकने की शक्ति है। किसी भी कार्रवाई की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा जिसके परिणामस्वरूप अन्याय होगा और न्याय को बढ़ावा देने में बाधा होगी। शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्यायालय किसी भी कार्यवाही को रद्द करने के लिए न्यायसंगत होगा यदि उसे लगता है कि इसे शुरू करना/जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या इन कार्यवाहियों को रद्द करना अन्यथा न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति करेगा। जब रिपोर्ट में कोई अपराध उजागर नहीं होता है, तो अदालत तथ्य के प्रश्न की जांच कर सकती है। जब किसी रिपोर्ट को रद्द करने की मांग की जाती है, तो रिपोर्ट में क्या आरोप लगाया गया है और क्या कोई

अपराध बनता है, इसका आकलन करने के लिए सामग्री को देखने की अनुमति है, भले ही आरोपों को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया जाए।

18. अब हम यह देखेंगे कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आरोप तय करने के चरण में धारा 482 सीआरपीसी के आवेदन के संबंध में समय-समय पर क्या टिप्पणी की है।

19. बिहार राज्य बनाम रमेश सिंह, (1977) 4 एससीसी 39 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:-

"4. धारा 226 के तहत अभियोजन पक्ष के लिए मामला शुरू करते समय अभियोजक को अभियुक्त के खिलाफ आरोप का वर्णन करना होता है और यह बताना होता है कि वह किस साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त के अपराध को साबित करना चाहता है। इसके बाद प्रारंभिक चरण में न्यायालय का कर्तव्य होता है कि वह मामले के रिकॉर्ड और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करे और उस संबंध में अभियुक्त और अभियोजन पक्ष की दलीलें सुने। इसके बाद न्यायाधीश को धारा 227 या धारा 228 के तहत आदेश पारित करना होता है। यदि न्यायाधीश का मानना है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा और ऐसा करने के उसके कारणों को दर्ज करेगा, जैसा कि धारा 227 में कहा गया है। दूसरी ओर, यदि न्यायाधीश की राय है कि यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है जो- ...

(ख) न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध लिखित रूप में आरोप तैयार करेगा, जैसा कि धारा 228 में प्रावधान है। दोनों प्रावधानों को एक साथ पढ़ने पर, जैसा कि उन्हें होना चाहिए, <u>यह स्पष्ट होगा कि परीक्षण की शुरुआत और प्रारंभिक चरण में अभियोजक द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य की सच्चाई, सत्यता और प्रभाव का सावधानीपूर्वक न्याय नहीं किया जाना चाहिए। न ही अभियुक्त के संभावित बचाव को कोई महत्व दिया जाना चाहिए। मुकदमे के उस चरण में न्यायाधीश के लिए यह अनिवार्य नहीं है कि वह किसी भी विस्तार से विचार करे और संवेदनशील तराजू पर तौलें कि क्या तथ्य, यदि सिद्ध हो जाते हैं, तो अभियुक्त की निर्दोषता के साथ असंगत होंगे या नहीं। परीक्षण और निर्णय का मानक जो अभियुक्त के दोषी होने या न होने के बारे में निष्कर्ष दर्ज करने से पहले अंतिम रूप से लागू किया जाना है, वह संहिता की धारा 227 या धारा 228 के तहत मामले का फैसला करने के चरण में बिल्कुल लागू नहीं किया जाना चाहिए। उस चरण में न्यायालय को यह नहीं देखना है कि अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं या क्या मुकदमे का अंत उसके दोषसिद्ध होने पर होना निश्चित है। यदि मामला संदेह के क्षेत्र में रहता है, तो अभियुक्त के</u>

खिलाफ गहरा संदेह मुकदमे के समापन पर उसके अपराध के सबूत का स्थान नहीं ले सकता। लेकिन प्रारंभिक चरण में यदि कोई प्रबल संदेह है जिसके कारण न्यायालय को लगता है कि यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने कोई अपराध किया है, तो न्यायालय यह नहीं कह सकता कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं है।

(जोर दिया गया)

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भारत संघ बनाम प्रफुल्ल कुमार सामल, (1979) 3 एससीसी 4 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"7..... "अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं" शब्द स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि न्यायाधीश अभियोजन पक्ष के आदेश पर आरोप तय करने के लिए मात्र डाकघर नहीं है, बल्कि उसे मामले के तथ्यों पर अपने न्यायिक दिमाग का प्रयोग करना होता है ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि अभियोजन पक्ष द्वारा मुकदमा चलाने के लिए मामला बनाया गया है या नहीं। इस तथ्य का आकलन करते समय, न्यायालय के लिए मामले के पक्ष और विपक्ष में प्रवेश करना या साक्ष्य और संभावनाओं का वजन और संतुलन करना आवश्यक नहीं है, जो वास्तव में मुकदमा शुरू होने के बाद उसका कार्य है। धारा 227 के चरण में, न्यायाधीश को केवल यह पता लगाने के लिए साक्ष्य को छांटना होता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। आधार की पर्याप्तता पुलिस द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य या न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों की प्रकृति को ध्यान में रखेगी जो स्पष्ट रूप से यह प्रकट करते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध संदेहास्पद परिस्थितियाँ हैं ताकि उसके विरुद्ध आरोप तय किया जा सके।

.....

10. इस प्रकार, ऊपर वर्णित अधिकारियों के विचार पर, निम्नलिखित सिद्धांत उभर कर आते हैं:

(1) न्यायाधीश को धारा 227 के तहत आरोप तय करने के प्रश्न पर विचार करते समय, अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं, यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए साक्ष्य को छांटने और तौलने का निस्संदेह अधिकार है।

(2) जहां न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री अभियुक्त के खिलाफ गंभीर संदेह प्रकट करती है, जिसे उचित रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है, न्यायालय आरोप तय करने और मुकदमे को आगे बढ़ाने में पूरी तरह से न्यायसंगत होगा।

(3) प्रथम दृष्टया मामला निर्धारित करने का परीक्षण स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा और सार्वभौमिक अनुप्रयोग का नियम निर्धारित करना कठिन है। हालांकि, कुल मिलाकर यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश संतुष्ट है कि उसके सामने प्रस्तुत साक्ष्य अभियुक्त के खिलाफ कुछ संदेह को जन्म देते हैं, लेकिन गंभीर संदेह नहीं है, तो वह अभियुक्त को दोषमुक्त करने के अपने अधिकार के भीतर पूरी तरह से होगा।

(4) कि धारा 227 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय न्यायाधीश जो वर्तमान संहिता के तहत एक वरिष्ठ और अनुभवी न्यायालय है, वह केवल एक डाकघर या अभियोजन पक्ष के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, बल्कि उसे मामले की व्यापक संभावनाओं, साक्ष्यों और न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों के समग्र प्रभाव, मामले में दिखाई देने वाली किसी भी बुनियादी कमज़ोरी आदि पर विचार करना होगा। हालाँकि इसका मतलब यह नहीं है कि न्यायाधीश को मामले के पक्ष और विपक्ष में एक भटकावपूर्ण जांच करनी चाहिए और सबूतों को तौलना चाहिए जैसे कि वह एक परीक्षण कर रहा हो।

(जोर दिया गया)

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम सोम नाथ थापा, (1996) 4 एससीसी 659 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:-

"32. उपर्युक्त से पता चलता है कि यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर कोई अदालत इस निष्कर्ष पर पहुँच सकती है कि अपराध का होना संभावित परिणाम है, तो आरोप तय करने का मामला मौजूद है। दूसरे शब्दों में कहें तो, यदि अदालत को लगता है कि आरोपी ने अपराध किया है तो वह आरोप तय कर सकती है, हालांकि दोषसिद्धि के लिए यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक है कि आरोपी ने अपराध किया है। यह स्पष्ट है कि आरोप तय करने के चरण में रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के सत्यापन मूल्य पर विचार नहीं किया जा सकता है; अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को उस चरण में सत्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। "

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य बनाम मोहनलाल सोनी, (2000) 6 एससीसी 338 के मामले में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"7. स्पष्ट न्यायिक दृष्टिकोण यह है कि आरोप तय करने के चरण में, अदालत को प्रथम दृष्टया यह विचार करना होगा कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। अदालत को यह निष्कर्ष निकालने के लिए साक्ष्य की

सराहना करने की आवश्यकता नहीं है कि प्रस्तुत सामग्री अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त है या नहीं। "

23. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने के. रामकृष्ण बनाम बिहार राज्य, (2000) 8 एससीसी 547 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:-

"4. धारा 239 के तहत ट्रायल कोर्ट और धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की जांच करने के लिए नहीं कहा जाता है कि प्रश्नगत साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं या जिस साक्ष्य पर भरोसा किया गया है वह आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त है या नहीं। हालांकि, अगर स्वीकार किए गए तथ्यों और शिकायतकर्ता या अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों और सबूतों को तौलने या छांटने के बिना कोई मामला नहीं बनता है, तो आरोपी के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को खत्म या रद्द किया जाना चाहिए। जैसा कि इस न्यायालय ने **राजेश बजाज बनाम राज्य एनसीटी दिल्ली (1999) 3 एससीसी 259** में देखा है, उच्च न्यायालय या मजिस्ट्रेट को भी आरोपी पर लगाए गए अपराध के तत्वों की जांच के लिए शिकायत को बेहतरीन गेज के छलनी से छानने के लिए सख्त हाइपरटेक्निकल दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए। इस तरह के प्रयास को परीक्षण के दौरान उचित ठहराया जा सकता है, लेकिन प्रारंभिक चरण के दौरान नहीं।

(जोर दिया गया)

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उड़ीसा राज्य बनाम देबेन्द्र नाथ पाढ़ी, (2005) 1 एससीसी 568 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"8. धारा 227 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "मामले का अभिलेख" का क्या अर्थ है? यद्यपि संहिता में "मामला" शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है, लेकिन धारा 209 उक्त शब्द की व्याख्या पर प्रकाश डालती है। यह स्पष्ट है कि धारा 227 में निर्धारित मामले का अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेज धारा 209 में संदर्भित मामले और दस्तावेजों से संबंधित हैं। संहिता की धारा 209 के साथ धारा 227 का यही स्पष्ट अर्थ है। संहिता में कोई भी प्रावधान अभियुक्त को आरोप तय करने के चरण में कोई सामग्री या दस्तावेज दाखिल करने का अधिकार नहीं देता है। यह अधिकार केवल परीक्षण के चरण में दिया जाता है।

.....

16. .....हालाँकि, इस पहलू पर **राज्य भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो बनाम पी. सूर्यप्रकाशम [1999 एससीसी (क्रि) 373]** में ध्यान दिया गया है, जहाँ संहिता की धारा 239 और 240 के दायरे पर विचार करते हुए यह माना गया था कि आरोप तय करते समय, ट्रायल कोर्ट को केवल धारा 173 के तहत संदर्भित पुलिस रिपोर्ट और उसके साथ भेजे गए दस्तावेजों पर विचार करना चाहिए और कर सकता है। उस स्तर पर अभियुक्त के पास केवल सुनवाई का अधिकार है और उससे अधिक कुछ नहीं। (जोर दिया गया) अभियुक्त द्वारा अपने दावे के समर्थन में दायर दस्तावेजों पर गौर करके कार्यवाही को रद्द करने के उच्च न्यायालय के फैसले को कि उसके

खिलाफ कोई मामला नहीं बनाया गया था, यहाँ तक कि ट्रायल शुरू होने से पहले भी इस न्यायालय ने पलट दिया था। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि पक्षों के विद्वान वकील ने इस आधार पर तर्क दिए कि लागू होने वाले सिद्धांत समान होंगे - चाहे मामला धारा 227 और 228 के तहत हो या धारा 239 और 240 के तहत हो।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सोमा चक्रवर्ती बनाम राज्य, (2007) 5 एससीसी 403 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"10. यह उल्लेख किया जा सकता है कि उपर्युक्त निर्णयों में उल्लिखित **स्थापित कानूनी स्थिति** यह है कि यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर न्यायालय यह राय बना सकता है कि अभियुक्त ने अपराध किया है तो वह आरोप तय कर सकता है, हालांकि दोषसिद्धि के लिए यह निष्कर्ष उचित संदेह से परे साबित होना आवश्यक है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। आरोप तय करते समय रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के सत्यापन मूल्य पर विचार नहीं किया जा सकता है और अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को उस स्तर पर सत्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। आरोप तय करने से पहले न्यायालय को रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री पर अपना न्यायिक दिमाग लगाना चाहिए और संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त द्वारा अपराध करना संभव था। क्या वास्तव में अभियुक्त ने अपराध किया है, इसका निर्णय केवल मुकदमे में ही किया जा सकता है। "

(जोर दिया गया)

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ओंकार नाथ मिश्रा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2008) 2 एससीसी 561 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:-

"11. यह सामान्य बात है कि आरोप तय करने के चरण में न्यायालय को अभिलेख पर मौजूद सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करना होता है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे प्राप्त तथ्यों को उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए, तो कथित अपराध के सभी तत्वों के अस्तित्व का पता चलता है। उस चरण में न्यायालय से अभिलेख पर मौजूद सामग्री के सत्यापन मूल्य की गहराई से जांच करने की अपेक्षा नहीं की जाती है। इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध किया गया है और अभियुक्त को दोषी ठहराने का कोई आधार नहीं है। उस चरण में, सामग्री पर आधारित मजबूत संदेह भी, जो न्यायालय को कथित अपराध के तथ्यात्मक तत्वों के अस्तित्व के बारे में एक अनुमानात्मक राय बनाने के लिए प्रेरित करता है, उस अपराध के संबंध में अभियुक्त के खिलाफ आरोप तय करने को उचित ठहराएगा। "

(जोर दिया गया)

27. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पी. विजयन बनाम केरल राज्य, (2010) 2 एससीसी 398 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"11. धारा 227 के चरण में, न्यायाधीश को केवल यह पता लगाने के लिए साक्ष्यों की छानबीन करनी होती है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं। दूसरे शब्दों में, आधार की पर्याप्तता पुलिस द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य या अदालत के समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों की प्रकृति को ध्यान में रखेगी, जो स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं कि अभियुक्त के विरुद्ध संदेहास्पद परिस्थितियाँ हैं, ताकि उसके विरुद्ध आरोप तय किया जा सके।

12. .....इस न्यायालय ने इस प्रकार माना है कि यद्यपि परीक्षण चरण में मजबूत संदेह सबूत की जगह नहीं ले सकता है, फिर भी यह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप तय करने के लिए परीक्षण न्यायाधीश की संतुष्टि के लिए पर्याप्त हो सकता है। "

(जोर दिया गया)

28. सज्जन कुमार बनाम सीबीआई, (2010) 9 एससीसी 368 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"21. धारा 227 और 228 के दायरे के बारे में अधिकारियों द्वारा विचार किए जाने पर, निम्नलिखित सिद्धांत सामने आते हैं:

(i) धारा 227 सीआरपीसी के तहत आरोप तय करने के प्रश्न पर विचार करते समय न्यायाधीश के पास सबूतों को छांटने और तौलने का निस्संदेह अधिकार है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। प्रथम दृष्टया मामला निर्धारित करने का परीक्षण प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा।

(ii) जहां अदालत के समक्ष प्रस्तुत सामग्री अभियुक्त के खिलाफ गंभीर संदेह प्रकट करती है, जिसे ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया है, अदालत आरोप तय करने और मुकदमे को आगे बढ़ाने में पूरी तरह से न्यायसंगत होगी।

(iii) न्यायालय केवल डाकघर या अभियोजन पक्ष के मुखपत्र के रूप में कार्य नहीं कर सकता है, बल्कि उसे मामले की व्यापक संभावनाओं, साक्ष्यों के समग्र प्रभाव और न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों, किसी भी बुनियादी कमियों आदि पर विचार करना होता है। हालांकि, इस स्तर पर मामले के पक्ष और विपक्ष में कोई जांच नहीं की जा सकती है और साक्ष्यों का मूल्यांकन इस तरह नहीं किया जा सकता है जैसे कि वह मुकदमा चला रहा हो।

(iv) यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर न्यायालय यह राय बना सकता है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, तो वह आरोप तय कर सकता है, हालांकि दोषसिद्धि के लिए यह निष्कर्ष उचित संदेह से परे साबित होना आवश्यक है कि अभियुक्त ने अपराध किया है।

(v) आरोप तय करते समय, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के सत्यापन मूल्य पर विचार नहीं किया जा सकता है, लेकिन आरोप तय करने से पहले न्यायालय को रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री पर अपना न्यायिक दिमाग लगाना चाहिए और संतुष्ट होना चाहिए कि अभियुक्त द्वारा अपराध करना संभव था।

(vi) धारा 227 और 228 के चरण में, न्यायालय को अभिलेख पर सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है, ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे उभरने वाले तथ्य, उनके अंकित मूल्य पर, कथित अपराध के सभी घटकों के अस्तित्व को प्रकट करते हैं। इस सीमित उद्देश्य के लिए, साक्ष्यों की छानबीन करें, क्योंकि उस प्रारंभिक चरण में भी यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि अभियोजन पक्ष द्वारा बताई गई सभी बातों को सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाए, भले ही वह सामान्य ज्ञान या मामले की व्यापक संभावनाओं के विपरीत हो।

(vii) यदि दो दृष्टिकोण संभव हैं और उनमें से एक गंभीर संदेह से अलग केवल संदेह को जन्म देता है, तो ट्रायल जज को अभियुक्त को बरी करने का अधिकार होगा और इस चरण में, उसे यह नहीं देखना है कि ट्रायल दोषसिद्धि या बरी होने के साथ समाप्त होगा या नहीं।

(जोर दिया गया)

29. **अमित कपूर बनाम रमेश चंद्र, (2012) 9 एससीसी 460 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने निम्नानुसार निर्णय दिया:-

"19. आरोप तय करने के आरंभिक चरण में न्यायालय का सरोकार सबूत से नहीं बल्कि इस प्रबल संदेह से होता है कि अभियुक्त ने कोई अपराध किया है, जिसके मामले में यदि मुकदमा चलाया जाए तो वह दोषी साबित हो सकता है। न्यायालय को बस यह देखना होता है कि अभिलेख पर मौजूद सामग्री और तथ्य अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप हैं या नहीं। उस चरण में दोष का अंतिम परीक्षण लागू नहीं किया जाना चाहिए। .....

.....

27. ..... इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के वस्तुनिष्ठ विश्लेषण के आधार पर हम अधिकार क्षेत्र के उचित प्रयोग के लिए विचार किए जाने वाले कुछ सिद्धांतों को निकाल सकते हैं, विशेष रूप से धारा 397 या धारा 482 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में या दोनों के साथ, जैसा भी मामला हो, आरोप को रद्द करने के संबंध में:

27.1. यद्यपि धारा 482 के अन्तर्गत न्यायालय की शक्तियों की कोई सीमा नहीं है, परन्तु जितनी अधिक शक्ति होगी, इन शक्तियों का प्रयोग करते समय उतनी ही अधिक सावधानी और सतर्कता बरती जानी चाहिए। आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने की शक्ति, विशेष रूप से धारा 228 के अन्तर्गत लगाए गए

आरोप को, बहुत ही संयम से और सावधानी से प्रयोग किया जाना चाहिए, वह भी अत्यंत दुर्लभतम मामलों में।

27.2. न्यायालय को यह परीक्षण करना चाहिए कि मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों से लगाए गए निर्विवाद आरोप प्रथम दृष्टया अपराध को स्थापित करते हैं या नहीं। यदि आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी ऐसे निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है और जहां आपराधिक अपराध के मूल तत्व संतुष्ट नहीं हैं, तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है।

27.3. उच्च न्यायालय को अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। आरोप तय करने या आरोप खारिज करने के चरण में यह विचार करने के लिए साक्ष्य की कोई सावधानीपूर्वक जांच की आवश्यकता नहीं है कि मामला दोषसिद्धि में समाप्त होगा या नहीं।

27.4. जहां ऐसी शक्ति का प्रयोग न्याय की स्पष्ट चूक को रोकने और अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा ऐसे मामलों में भी की जा सकने वाली किसी गंभीर त्रुटि को सुधारने के लिए अत्यंत आवश्यक है, उच्च न्यायालय को अभियोजन पक्ष को अपनी अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में बाधा डालने के लिए, सीमा पर हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए।

27.5. जहां संहिता के किसी प्रावधान या किसी विशिष्ट कानून में ऐसी आपराधिक कार्यवाही की शुरूआत या संस्था और जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक है, ऐसे प्रतिबंध का उद्देश्य अभियुक्त को विशिष्ट सुरक्षा प्रदान करना है।

27.6. न्यायालय का कर्तव्य है कि वह किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता और शिकायतकर्ता या अभियोजन पक्ष के अपराधी की जांच करने और मुकदमा चलाने के अधिकार के बीच संतुलन बनाए।

27.7. न्यायालय की प्रक्रिया को अप्रत्यक्ष या अंतिम/अंतर्निहित उद्देश्य के लिए उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

27.8. जहां लगाए गए आरोप और जैसा कि अभिलेख और उसके साथ संलग्न दस्तावेजों से पता चलता है, मुख्य रूप से "सिविल गलत" को जन्म देते हैं और उसमें कोई "आपराधिकता का तत्व" नहीं है और वह आपराधिक अपराध के मूल तत्वों को संतुष्ट नहीं करता है, न्यायालय द्वारा आरोप को खारिज करना न्यायोचित हो सकता है। यहां तक कि ऐसे मामलों में भी न्यायालय साक्ष्य का आलोचनात्मक विश्लेषण नहीं करेगा।

27.9. न्यायालयों को एक और बहुत महत्वपूर्ण सावधानी बरतनी होगी कि वह अभिलेख पर मौजूद तथ्यों, साक्ष्यों और सामग्रियों की जांच करके यह निर्धारित नहीं कर सकता कि क्या पर्याप्त सामग्री है जिसके आधार पर मामला दोषसिद्धि में समाप्त होगा; न्यायालय मुख्य रूप से आरोपों को समग्र रूप से लेकर चिंतित है कि क्या वे अपराध का गठन करेंगे और यदि ऐसा है, तो क्या यह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है जो अन्याय की ओर ले जाता है।

27.10. यह न तो आवश्यक है और न ही न्यायालय को पूर्ण जांच करने या जांच एजेंसियों द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्य की सराहना करने के लिए कहा जाता है ताकि पता लगाया जा सके कि यह बरी या दोषसिद्धि का मामला है।

27.11. जहां आरोप एक सिविल दावे को जन्म देते हैं और एक अपराध भी बनते हैं, केवल इसलिए कि एक सिविल दावा बनाए रखने योग्य है, इसका मतलब यह नहीं है कि एक आपराधिक शिकायत को बनाए नहीं रखा जा सकता है।

27.12. धारा 228 और/या धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, न्यायालय किसी अभियुक्त द्वारा दिए गए बाहरी सामग्रियों पर विचार नहीं कर सकता है ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि कोई अपराध प्रकट नहीं हुआ था या उसके बरी होने की संभावना थी। न्यायालय को अभियोजन पक्ष द्वारा संलग्न रिकॉर्ड और दस्तावेजों पर विचार करना होगा।

27.13. आरोप को रद्द करना निरंतर अभियोजन के नियम का अपवाद है। जहां अपराध की व्यापक रूप से पुष्टि हो चुकी है, वहां न्यायालय को उस प्रारंभिक चरण में उसे रद्द करने के बजाय अभियोजन जारी रखने की अनुमति देने में अधिक इच्छुक होना चाहिए। न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह दस्तावेजों या अभिलेखों की स्वीकार्यता और विश्वसनीयता तय करने के उद्देश्य से अभिलेखों को एकत्रित करे, बल्कि यह प्रथम दृष्टया राय है।

27.14. जहां संहिता की धारा 173(2) के तहत आरोप-पत्र, रिपोर्ट में मौलिक कानूनी दोष हैं, वहां न्यायालय आरोप तय करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र में हो सकता है।

27.15. उपरोक्त में से किसी एक या सभी के साथ, जहां न्यायालय को लगता है कि यह संहिता की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या न्याय के हित में है, अन्यथा वह आरोप को रद्द कर सकता है। शक्ति का प्रयोग एक्स-डेबिटो जस्टिटिया यानी वास्तविक और पर्याप्त न्याय करने के लिए किया जाना चाहिए, जिसके प्रशासन के लिए ही न्यायालय मौजूद हैं...

27.16. ये वे सिद्धांत हैं जिन्हें व्यक्तिगत रूप से और अधिमानतः संचयी रूप से (एक या अधिक) उच्च न्यायालय द्वारा संहिता की धारा 482 के तहत असाधारण और व्यापक पूर्णता और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए उपदेशों के रूप में ध्यान में रखा जाना चाहिए। जहां किसी अपराध के लिए तथ्यात्मक आधार निर्धारित किया गया है, अदालतों को अनिच्छुक होना चाहिए और कार्यवाही को रद्द करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए, भले ही एक या दो तत्व बताए नहीं गए हों या यदि अपराध की आवश्यकताओं का पर्याप्त अनुपालन होता है तो वे संतुष्ट नहीं होते हैं।

(जोर दिया गया)

30. **माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तमिलनाडु राज्य बनाम एन सुरेश राजन, (2014) 11 एससीसी 709** के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"29. ... इस स्तर पर, सामग्री के सत्यापन मूल्य पर विचार किया जाना चाहिए और न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह मामले की गहराई में जाए और यह मान ले कि सामग्री दोषसिद्धि की गारंटी नहीं देगी। <u>हमारी राय में, इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अपराध किया गया है और यह नहीं कि क्या अभियुक्त को दोषी</u>

ठहराने का कोई आधार बनाया गया है। दूसरे शब्दों में, यदि न्यायालय को लगता है कि अभियुक्त ने रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के सत्यापन मूल्य के आधार पर अपराध किया है, तो वह आरोप तय कर सकता है; हालांकि दोषसिद्धि के लिए न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि अभियुक्त ने अपराध किया है। कानून इस स्तर पर लघु परीक्षण की अनुमति नहीं देता है। "

(जोर दिया गया)

31. **कर्नाटक राज्य बनाम एम.आर. हिरेमठ, (2019)7 एससीसी 515 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय** ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"25. उच्च न्यायालय को इस तथ्य का संज्ञान होना चाहिए था कि ट्रायल कोर्ट धारा 239 सीआरपीसी के प्रावधानों के तहत डिस्चार्ज के लिए एक आवेदन पर विचार कर रहा था। इस अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले मापदंडों को इस न्यायालय के कई निर्णयों में अभिव्यक्ति मिली है। यह कानून का एक स्थापित सिद्धांत है कि डिस्चार्ज के लिए आवेदन पर विचार करने के चरण में अदालत को इस धारणा पर आगे बढ़ना चाहिए कि अभियोजन पक्ष द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री सत्य है और सामग्री का मूल्यांकन यह निर्धारित करने के लिए करना चाहिए कि क्या सामग्री से उभरने वाले तथ्य, उसके अंकित मूल्य पर, अपराध का गठन करने के लिए आवश्यक तत्वों के अस्तित्व का खुलासा करते हैं। ....."

(जोर दिया गया)

32. **दीपकभाई जगदीशचंद्र पटेल बनाम गुजरात राज्य, (2019) 16 एससीसी 547] में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:**

" 23. इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार आरोप तय करने के चरण में न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह मात्र डाकघर की तरह काम न करे। न्यायालय को अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री की जांच करनी चाहिए। जांच की जाने वाली सामग्री वह सामग्री होगी जो अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत की गई है और जिस पर भरोसा किया गया है। जांच इस अर्थ में सावधानीपूर्वक नहीं की जानी चाहिए कि न्यायालय पूर्ण परीक्षण के बाद संपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने के पश्चात दलीलें सुनने वाले ट्रायल जज की भूमिका में आ जाता है और प्रश्न यह नहीं है कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए मामला बनाया है या नहीं। केवल इतना आवश्यक है कि न्यायालय को यह संतुष्ट होना चाहिए कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध मुकदमा चलाने के लिए मामला बनता है। एक मजबूत संदेह ही पर्याप्त है। हालांकि, एक मजबूत संदेह किसी सामग्री पर आधारित होना चाहिए। सामग्री ऐसी होनी चाहिए जिसे परीक्षण के चरण में साक्ष्य में बदला जा सके। प्रबल संदेह न्यायाधीश की नैतिक धारणाओं

पर आधारित विशुद्ध व्यक्तिपरक संतुष्टि नहीं हो सकता कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें यह संभव है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। प्रबल संदेह वह संदेह होना चाहिए जो किसी ऐसी सामग्री पर आधारित हो जो न्यायालय को प्रथम दृष्टया यह विचार करने के लिए पर्याप्त लगे कि अभियुक्त ने अपराध किया है। "

(जोर दिया गया)

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ओडिशा राज्य बनाम प्रतिमा मोहंती, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 1222 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"16.....निर्मुक्ति के चरण में और/या धारा 482 सीआरपीसी के तहत आवेदन पर विचार करते समय न्यायालयों को आरोपों और/या साक्ष्यों के गुण-दोषों पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है, जैसे कि वे लघु-परीक्षण कर रहे हों। जैसा कि इस न्यायालय ने माना है कि धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्तियाँ बहुत व्यापक हैं, लेकिन व्यापक शक्ति प्रदान करने के लिए न्यायालय को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। यह न्यायालय पर एक भारी और अधिक परिश्रमी कर्तव्य डालता है।

.....

18. इसलिए, उपर्युक्त पर विचार करते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादियों-आरोपी के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही किसी भी तरह से कानून की प्रक्रिया और/या न्यायालय का दुरुपयोग था....

(जोर दिया गया)

34. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सरन्या बनाम भारती, (2021) 8 एससीसी 583 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"11. .....यह देखा गया है और माना गया है कि आरोप तय करने के चरण में, न्यायालय को केवल यह पता लगाने के लिए सामग्री पर विचार करना है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है। यह देखा गया है और माना गया है कि उस चरण में, उच्च न्यायालय को रिकॉर्ड पर सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे उभरने वाले तथ्य, उनके अंकित मूल्य पर, कथित अपराध या अपराधों का गठन करने वाले सभी अवयवों के अस्तित्व का खुलासा करते हैं। यह भी देखा गया है और माना गया है कि इस चरण में उच्च न्यायालय को रिकॉर्ड पर सबूतों की सराहना करने और आरोपों पर गुण-दोष के आधार पर विचार करने और दर्ज किए गए सबूतों के आधार पर यह पता लगाने की आवश्यकता नहीं है कि आरोप पत्र दायर करने वाले अभियुक्त या जिसके खिलाफ आरोप तय किया गया है, उसे दोषी ठहराया जा सकता है या नहीं। "

(जोर दिया गया)

35. गुलाम हसन बेग बनाम मोहम्मद मकबूल माग्रे, (2022) 12 एससीसी 657 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"27. इस प्रकार, उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि ट्रायल कोर्ट को आरोप तय करते समय अपने विवेक का प्रयोग करने का कर्तव्य सौंपा गया है और उसे केवल डाकघर के रूप में कार्य नहीं करना चाहिए। पुलिस द्वारा प्रस्तुत आरोप-पत्र पर बिना विवेक का प्रयोग किए और अपनी राय के समर्थन में संक्षिप्त कारण दर्ज किए बिना पृष्ठांकन करना कानून द्वारा समर्थित नहीं है। हालांकि, आरोप तय करते समय अदालत द्वारा जिस सामग्री का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है, वह वह सामग्री होनी चाहिए जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया हो और जिस पर भरोसा किया गया हो। ऐसी सामग्री की छानबीन इतनी सावधानी से नहीं की जानी चाहिए कि यह अभ्यास अभियुक्त के अपराध या अन्यथा का पता लगाने के लिए एक छोटा परीक्षण बन जाए। इस स्तर पर केवल इतना ही आवश्यक है कि अदालत को यह संतुष्ट होना चाहिए कि अभियोजन पक्ष द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्य यह मानने के लिए पर्याप्त हैं कि अभियुक्त ने कोई अपराध किया है। यहां तक कि एक मजबूत संदेह भी पर्याप्त होगा। निस्संदेह, धारा 173 सीआरपीसी के तहत अभियोजन पक्ष द्वारा अंतिम रिपोर्ट के रूप में अदालत के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के अलावा, अदालत किसी अन्य साक्ष्य या सामग्री पर भी भरोसा कर सकती है जो उत्कृष्ट गुणवत्ता की हो और अभियोजन पक्ष द्वारा उसके समक्ष लगाए गए आरोप से सीधे संबंधित हो। ....."

(जोर दिया गया)

36. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई बनाम आर्यन सिंह, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 379 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"10. उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए विवादित सामान्य निर्णय और आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने अपने समक्ष कार्यवाही को इस प्रकार निपटाया है, मानो उच्च न्यायालय एक लघु परीक्षण कर रहा हो और/या उच्च न्यायालय विचारण के समापन पर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध आवेदनों पर विचार कर रहा हो। कानून के प्रमुख सिद्धांत के अनुसार, आपराधिक कार्यवाही के निर्वहन और/या निरस्तीकरण के चरण में, धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, न्यायालय को लघु परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है। उच्च न्यायालय ने विवादित सामान्य निर्णय और आदेश में यह पाया है कि अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप सिद्ध नहीं हुए हैं। यह वह चरण नहीं है, जहां अभियोजन/जांच एजेंसी को आरोपों को सिद्ध करने की आवश्यकता है। अभियोजन/जांच एजेंसी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर आरोपों को परीक्षण के दौरान सिद्ध किया जाना आवश्यक है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने इस स्तर पर, आरोपियों के खिलाफ जांच के दौरान आरोपों और एकत्रित सामग्री पर विस्तार से विचार करने में भौतिक रूप से गलती की है। आरोप मुक्त करने के

चरण में और/या धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्तियों का प्रयोग करते समय, न्यायालय के पास बहुत सीमित अधिकार क्षेत्र है और उसे इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि "क्या आरोपी के खिलाफ आगे की कार्यवाही के लिए कोई पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है जिसके लिए आरोपी पर मुकदमा चलाया जाना आवश्यक है या नहीं"।

(जोर दिया गया)

37. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तमिलनाडु राज्य बनाम आर. सौंदिररासु, (2023) 6 एससीसी 768 के मामले में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"69. इस न्यायालय द्वारा संदर्भित संदेह मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर आधारित होना चाहिए, जो उसे कथित अपराध के तथ्यात्मक तत्वों के अस्तित्व के बारे में एक अनुमानात्मक राय बनाने के लिए प्रेरित करता है। इसलिए, इस न्यायालय द्वारा प्रयुक्त शब्द "एक बहुत मजबूत संदेह" एक न्यायाधीश के अस्थिर मन का एक मजबूत संदेह नहीं होना चाहिए। वह संदेह मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत सामग्री पर आधारित होना चाहिए, जो उसे कथित अपराध के तथ्यात्मक तत्वों के अस्तित्व के बारे में एक अनुमानात्मक राय बनाने के लिए प्रेरित करता है।

.....

84. मामले के समग्र दृष्टिकोण में, हम आश्वस्त हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए विवादित आदेश कानून में टिकने योग्य नहीं हैं और उन्हें रद्द किया जाना चाहिए। मामले के रिकॉर्ड से उभरने वाली परिस्थितियाँ, प्रथम दृष्टया, कथित अपराध में अभियुक्त व्यक्तियों की संलिप्तता का संकेत देती हैं। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप निराधार हैं। मामले में विचारणीय मुद्दे हैं। यदि विचारणीय मुद्दे हैं, तो अदालत से प्रतिद्वंद्वी कथनों की सत्यता पर विचार करने की अपेक्षा नहीं की जाती है। "

(जोर दिया गया)

38. कानून की उपरोक्त चर्चाओं से यह स्पष्ट रूप से उभर कर आता है कि धारा 482 सीआरपीसी के तहत इस न्यायालय की शक्ति, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए, विशेष रूप से, परीक्षण के दौरान लगाए गए आरोप को बहुत ही संयम और सावधानी के साथ और वह भी दुर्लभतम मामलों में प्रयोग करने की आवश्यकता है। न्यायालय को इस बात का परीक्षण करना चाहिए कि मामले के रिकॉर्ड और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों से लगाए गए निर्विवाद आरोप प्रथम दृष्टया अपराध को स्थापित करते हैं या नहीं। न्यायालय केवल तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव पाए जाते हैं कि कोई भी विवेकशील व्यक्ति ऐसे आरोप पर विश्वास नहीं कर सकता है या जहां रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के अनुसार आपराधिक अपराध के मूल तत्व संतुष्ट नहीं हैं।

39. यह भी सामने आता है कि आरोप तय करने के चरण में न्यायालय को एक लघु परीक्षण करने की आवश्यकता होती है। उसे अभिलेख पर मौजूद सामग्री पर केवल यह पता लगाने के लिए विचार करना होता है कि क्या यह मानने का कोई आधार है कि अभियुक्त ने अपराध किया है, न कि यह देखने के लिए कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए कोई मामला बनाया है या नहीं। इस चरण में अभिलेख पर मौजूद सामग्री के सत्यापन मूल्य पर विचार नहीं किया जा सकता है, और अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर लाई गई सामग्री को सत्य के रूप में स्वीकार करना होगा। अभियोजक द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साक्ष्य की सत्यता, सत्यता और प्रभाव की सावधानीपूर्वक जांच नहीं की जानी चाहिए। न ही अभियुक्त के संभावित बचाव को कोई महत्व दिया जाना चाहिए। न्यायालय को अभिलेख पर मौजूद सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन इस उद्देश्य से करना होता है कि यह पता लगाया जा सके कि क्या उनसे उभरने वाले तथ्य उनके अंकित मूल्य पर कथित अपराध के सभी तत्वों के अस्तित्व को प्रकट करते हैं। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर मजबूत संदेह भी आरोप तय करने के लिए पर्याप्त है।

40. अब वर्तमान मामले पर आते हैं, इस न्यायालय के लिए विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी के अंतर्गत आरोप तय करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

41. आगे बढ़ने से पहले, भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी का संदर्भ लेना उचित होगा जो इस प्रकार है:

> "**304 बी. दहेज मृत्यु.-** (1) जहां किसी महिला की मृत्यु किसी जलने या शारीरिक चोट के कारण होती है या उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर सामान्य परिस्थितियों से भिन्न होती है और यह दर्शाया जाता है कि उसकी मृत्यु से ठीक पहले उसके पति या उसके पति के किसी रिश्तेदार द्वारा दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में उसके साथ क्रूरता या उत्पीड़न किया गया था, ऐसी मृत्यु को "दहेज मृत्यु" कहा जाएगा और ऐसे पति या रिश्तेदार को उसकी मृत्यु का कारण माना जाएगा।
>
> **स्पष्टीकरण**.- इस उपधारा के प्रयोजन के लिए, "दहेज" का वही अर्थ होगा जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है।
>
> (2) जो कोई दहेज हत्या करता है, उसे कम से कम सात वर्ष की कैद की सजा दी जाएगी, लेकिन जो आजीवन कारावास तक बढ़ाई जा सकेगी।

42. भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी के तत्व, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **परानागौड़ा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1369** में बताया गया है, इस प्रकार हैं:

> " **20. .....**

(i) महिला की मृत्यु जलने या शारीरिक चोट लगने या सामान्य परिस्थितियों के अलावा किसी अन्य कारण से हुई हो।

(ii) ऐसी मृत्यु उसकी शादी के सात साल के भीतर हुई हो।

(iii) उसे उसके पति या उसके पति के किसी रिश्तेदार द्वारा क्रूरता या उत्पीड़न का सामना करना पड़ा हो।

(iv) ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न दहेज की मांग के लिए या उससे संबंधित हो।

(v) ऐसी क्रूरता या उत्पीड़न महिला को उसकी मृत्यु से ठीक पहले दिया गया हो। "

43. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बंसीलाल बनाम हरियाणा राज्य, (2011) 11 एससीसी 359 में माना है कि आईपीसी की धारा 304 बी के प्रावधान को आकर्षित करने के लिए, अपराध के मुख्य तत्वों में से एक जिसे स्थापित किया जाना आवश्यक है, वह यह है कि "उसकी मृत्यु से ठीक पहले", उसे "दहेज की मांग के संबंध में" क्रूरता और उत्पीड़न का सामना करना पड़ा था। यह भी माना गया है कि "उसकी मृत्यु से ठीक पहले" अभिव्यक्ति को किसी भी कानून में परिभाषित नहीं किया गया है। इसलिए, प्रत्येक मामले में, न्यायालय को पीड़िता की मृत्यु के लिए जिम्मेदार तथ्यों और परिस्थितियों का विश्लेषण करना होगा और यह तय करना होगा कि दहेज की मांग और क्रूरता या उत्पीड़न और मृत्यु के बीच कोई निकट संबंध है या नहीं।

44. धारा 304 बी आईपीसी में प्रयुक्त **शब्द "जल्द"** के आयात के संबंध में, **माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शेर सिंह उर्फ परतापा बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 3 एससीसी 724** में निम्न प्रकार से निर्णय दिया है:

"16. .....हमें पता है कि शब्द "जल्द" धारा 304-बी में आता है; लेकिन हम इसके उपयोग की व्याख्या दिनों या महीनों या वर्षों के संदर्भ में नहीं, बल्कि इस रूप में करना पसंद करेंगे कि दहेज की मांग पुरानी या अतीत की बात नहीं होनी चाहिए, बल्कि धारा 304-बी के तहत मृत्यु या धारा 306 आईपीसी के तहत आत्महत्या का निरंतर कारण होना चाहिए। ....."

45. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 बी का संदर्भ देना भी प्रासंगिक होगा जो दहेज हत्या के बारे में अनुमान से संबंधित है। यह इस प्रकार है:

"113 बी. दहेज हत्या के बारे में अनुमान - जब यह प्रश्न हो कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी महिला की दहेज हत्या की है और यह दर्शाया गया है कि उसकी मृत्यु से ठीक पहले ऐसी महिला को ऐसे व्यक्ति द्वारा दहेज की मांग के लिए या उसके संबंध में क्रूरता या उत्पीड़न

का सामना करना पड़ा था, तो न्यायालय यह मान लेगा कि ऐसे व्यक्ति ने दहेज हत्या का कारण बनाया है।

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "दहेज हत्या" का वही अर्थ होगा जो दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) की धारा 304-बी में है। "

46. भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी और साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 बी के संबंध में **माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बैजनाथ बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2017) 1 एससीसी 101** में भी निम्न प्रकार से निर्णय दिया है:

> "29. उल्लेखनीय रूप से यह अनुमान भी दहेज की मांग के लिए या उससे संबंधित किसी भी अपराध के लिए आरोपित व्यक्ति द्वारा मृत महिला के साथ क्रूरता या उत्पीड़न के सबूत पर आधारित है। इस प्रकार दहेज मृत्यु के बारे में अनुमान केवल इस तथ्य के सबूत पर सक्रिय होगा कि मृतक महिला को अभियुक्त द्वारा दहेज की मांग के लिए या उससे संबंधित किसी भी तरह की क्रूरता या उत्पीड़न का सामना करना पड़ा था और वह भी मृत्यु के उचित सन्निकटन में। .....
>
> .....
>
> 32. इस न्यायालय ने संहिता की धारा 304-बी और अधिनियम की धारा 113-बी के दायरे और तात्पर्य पर अक्सर विचार करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि यह अनुमान इस तथ्य पर निर्भर करता है कि अभियोजन पक्ष पहले धारा 304-बी के अपराध के तत्वों को स्पष्ट करता है जैसा कि शिंदो बनाम पंजाब राज्य [शिंदो बनाम पंजाब राज्य, (2011) 11 एससीसी 517: (2011) 3 एससीसी (क्रि) 394] और राजीव कुमार बनाम हरियाणा राज्य [राजीव कुमार बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 16 एससीसी 640: (2014) 6 एससीसी (क्रि) 346] में दोहराया गया है। बाद के फैसले में, इस न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि संहिता की धारा 304-बी के तहत दहेज हत्या के आवश्यक तत्वों में से एक यह है कि अभियुक्त ने महिला की मृत्यु से ठीक पहले दहेज की मांग के संबंध में उसके साथ क्रूरता की होगी और इस तत्व को अभियोजन पक्ष द्वारा उचित संदेह से परे साबित किया जाना चाहिए और उसके बाद ही न्यायालय यह मान लेगा कि अभियुक्त ने अधिनियम की धारा 113-बी के तहत दहेज हत्या का अपराध किया है। इसने अनुमोदन के साथ के. प्रेमा एस. राव बनाम यादला श्रीनिवास राव [के. प्रेमा एस. राव बनाम यादला श्रीनिवास राव, (2003) 1 एससीसी 217: 2003 एससीसी (क्रि) 271] इस आशय से कि संहिता की धारा 304-बी के प्रावधान को आकर्षित करने के लिए, अपराध के मुख्य तत्वों में से एक जिसे स्थापित करने की आवश्यकता है वह यह है कि "उसकी मृत्यु से ठीक पहले" उसे "दहेज की मांग के संबंध में" क्रूरता और उत्पीड़न का सामना करना पड़ा था।

47. वर्तमान मामले पर वापस आते हुए, मैंने पाया कि मृतक रानी देवी की शादी लगभग तीन वर्ष पूर्व अभियुक्त-याचिकाकर्ता नीलेश कुमार सिंह उर्फ नीलेश कुमार

के साथ हुई थी तथा आरोप के अनुसार, विवाह के दो माह पश्चात, याचिकाकर्ता तथा उसके भाई रत्नेश कुमार एवं रत्नेश कुमार की पत्नी ने मृतका को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया, क्योंकि मृतका के पिता द्वारा याचिकाकर्ता के लिए मेडिकल कम्पनी खोलने की मांग पूरी नहीं की गई थी। हालांकि, मृतका के पिता, जो इस मामले में सूचक हैं, ऐसी कम्पनी खोलने में अपनी असमर्थता व्यक्त करते रहे। 31 अक्टूबर, 2016 को प्रातः लगभग 4:20 बजे अभियुक्त-याचिकाकर्ता द्वारा सूचक को सूचित किया गया कि उनकी पुत्री बीमार है तथा गम्भीर हृदयाघात के कारण पारस अस्पताल में भर्ती है। जब सूचक पारस अस्पताल पहुंचे, तो उनकी पुत्री रानी देवी की मृत्यु हो चुकी थी। जांच रिपोर्ट के अनुसार, छाती पर चोट के अलावा मुंह और नाक से खून बह रहा था और कंधे पर खून के धब्बे थे। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, अन्य बातों के अलावा, कठोर और कुंद पदार्थ के कारण तीसरी पसली के लेबल पर उरोस्थि का फ्रैक्चर है और मौत का कारण चोट के कारण रक्तस्राव है। पूरे शरीर में कठोरता भी पाई गई। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, 31.10.2016 को सुबह 11 बजे पोस्टमार्टम शुरू हुआ था।

48. याचिकाकर्ता के वकील के अनुसार, दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी, न ही दहेज के लिए कोई यातना दी गई थी, और न ही उसकी मृत्यु से ठीक पहले कोई यातना दी गई थी। सीने में दर्द और उल्टी के कारण उसे 31.10.2016 को सुबह लगभग 4:10 बजे पारस अस्पताल में भर्ती कराया गया था, जहाँ उपचार के दौरान उसे लगभग 45 मिनट तक कार्डियोपल्मोनरी रिससिटेशन (सीपीआर) दिया गया, जिसके दौरान छाती की पसलियाँ टूट गईं। इसलिए, उसकी स्वाभाविक मृत्यु हुई और याचिकाकर्ता द्वारा दहेज हत्या का कोई अपराध नहीं किया गया है।

49. हालांकि, राज्य के लिए विद्वान लोक सूचक अभियोजक और सूचनाकर्ता के लिए विद्वान वकील ने दृढ़ता से प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता-पति के लिए मेडिकल कंपनी खोलने के रूप में दहेज की मांग की गई थी और इसे पूरा न करने के कारण याचिकाकर्ता की पीड़िता/पत्नी को शादी के दो महीने बाद से प्रताड़ित किया गया और इस तरह की यातनाएं जारी रहीं, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार, भारतीय दंड संहिता की धारा 304 बी के साथ भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 बी के सभी तत्व मौजूद हैं और आरोपित आदेश में कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर डिस्चार्ज याचिका को एल.डी. ट्रायल कोर्ट ने यह पाते हुए खारिज कर दिया है कि धारा 304 (बी) के तहत आरोप तय करने के लिए पर्याप्त सामग्री है।

50. अपने दावे को पुष्ट करने के लिए राज्य के लिए एल.डी. ए.पी.पी. और सूचनाकर्ता के लिए एल.डी. वकील ने बताया कि शुरू में सूचनाकर्ता-मृतका के पिता को बताया गया था कि उनकी बेटी को दिल का दौरा पड़ने के कारण पारस अस्पताल में भर्ती कराया गया था, जबकि जांच के दौरान आरोपियों ने पुलिस को बताया कि उसे पेट दर्द और उल्टी की शिकायत थी। दोनों ही स्थितियों में सी.पी.आर. की कोई आवश्यकता नहीं थी और पसलियों के फ्रैक्चर का कोई कारण नहीं था। उन्होंने यह भी बताया कि पोस्टमार्टम शुरू होने के समय पूरे शरीर पर रिगर मोर्टिस मौजूद था, जिसका अर्थ है कि पीड़िता 31.10.2016 को सुबह 4:10 बजे पारस अस्पताल में भर्ती होने से पहले ही मर चुकी थी, क्योंकि उसी दिन सुबह 11:00 बजे जब पोस्टमार्टम शुरू हुआ, तो पीड़िता के पूरे शरीर पर रिगर मोर्टिस मौजूद पाया गया और चिकित्सा विज्ञान के अनुसार, लगभग 18 घंटे में पूरे शरीर में रिगर मोर्टिस विकसित होता है, जिससे पता चलता है कि वह पारस अस्पताल में लाए जाने से बहुत पहले ही मर चुकी होगी। पारस अस्पताल में पीड़िता का भर्ती होना और उसका इलाज इस तरह से किया गया कि यह दिखाया जा सके कि इलाज के दौरान अस्पताल में उसकी मौत हो गई थी।

51. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 304 बी के तहत आरोप तय करने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री है। इसलिए, आरोपित आदेश में कोई अवैधता या दोष नहीं है, न ही अदालत की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग या न्याय की विफलता है।

52. तदनुसार, वर्तमान याचिका खारिज की जाती है, आक्षेपित आदेश को बरकरार रखते हुए।

(जितेंद्र कुमार, न्यायमूर्ति)

चंदन/रवीशा
नाकर/शोएब

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।